ISSN 2581-9917

संस्कारवान् युवापीढ़ी का निर्माण

डॉ. चेतना उपाध्याय*

उक्त स्थिति वर्तमान समय की ज्वलंत समस्या बन गई है। आज जब इस समस्या से समाज पूरी तरह आहत होने लगा है, तब हमारा ध्यान इस विषय की तरफ गया है। इस कारणवश उक्त समस्या थोड़ा जटिल रूप धारण कर चुकी है। आइए इसके समाधान के प्रयास हेतु योजनाबद्ध प्रारूप में आगे बढ़े। सर्वप्रथम हम इसके कारणों को जानने का प्रयास करते हैं क्योंकि प्रत्येक क्रिया तब समस्या बनती है जब वह हमारे व्यक्तिगत हितों पर कुठाराघात करने लगती है। वह अनेकानेक विशिष्ट कारणों से जन्म लेती है। यदि हम उचित कारणों की पहचान कर पाए तो निवारण का प्रयास किया जाना सार्थक हो पाएगा। प्रकृति का नियम है सूर्य पूर्व में उदय होता है व समय चक्र आधार पर सुनिश्चित समय पर पुनः सूर्योदय की संभावना के साथ आगे बढ़ता-बढ़ता पश्चिम की ओर अस्ताचल में पहुँच अस्त हो जाता है।

प्रकृति के उक्त नियमानुसार हमें भी इसी विश्वास के साथ आगे बढ़ना है कि हमारी युवा पीढ़ी आगे बढ़ते-बढ़ते अस्ताचल की ओर पहुंच रही है। कारणों पर ध्यान केन्द्रित करें तो निवारण रूपी सूर्योदय सुनिश्चित है।

विश्व में अपनी श्रेष्ठता का परचम फहराने वाले हम भारतीय बरसों पहले मुगलों के आक्रमण से आहत हुए। तब हमने अपनी सांस्कृतिक मर्यादाओं की खातिर अपने आप को सीमित किया और करते गए। परिणामस्वरूप हमें अपनी विराट भारतीय संस्कृति की सीमाओं का बोध कुछ ही समय में आहत करने लगा। ऐसा बोध भी तब हुआ जब पश्चिम के अंग्रेज व्यापारियों ने व्यापार के माध्यम से धीरे-धीरे हमें गुलामी की बेड़ियों में जकड़ लिया। उनकी सांस्कृतिक स्वतंत्रता हमें आकर्षित कर रही थी व अपनी अनुशासित मर्यादित संस्कृति हमें हीनता बोधक लग रही थी। हमें लगने लगा कि हमारी संस्कृति ने हमें बांधकर बंधन लाद दिए हैं। हम मुक्त नहीं हैं, इस कारणवश हम स्वयं ही हीनता बोधक ग्रंथियों से ग्रसित होने लगे। अंग्रेजों को हमारी इस प्रवृत्ति से लाभ उठाना सहज हो गया परिणामस्वरूप हमारे चहुंओर एक दुष्चक्र-सा निर्मित होता गया। धीरे-धीरे अंग्रेज अपनी अंग्रेजियत के साथ हम पर हावी होते गए। हम मूक दर्शक बन अपनी सांस्कृतिक धरोहर से खिलवाड़ होता देखते रह गए। हमारी गंगा-जमुनी संस्कृति सर्व धर्म समभाव के साथ आगे बढ़ती गई। यह आगे बढ़ना इतना सहज था कि हम कुछ समझ पाए उससे पहले ही आगे बढ़ गए। यह हमें दिखाई तो उस समय भी दे रहा था मगर उसकी कर्कश ध्वनि अब कानों में पड़ी है। यहाँ हमें विज्ञान का वह सिद्धांत याद आ रहा है जिसमें बताया गया है कि प्रकाश की गति ध्वनि की गति से कई गुना तीव्र होती है अतः प्रकाश दिखाई देने के लंबे समय बाद उससे संबंधित ध्वनि सुनाई दे पाती है। संस्कृति की दूसरी प्रमुख विशेषता उसका लचीलापन है। हम इस गुणात्मकता का दोहन करते-करते इतने आगे बढ़ गए कि हमारी सांस्कृतिक प्रत्यास्थता जगह-जगह से ढीली पड़ झोल खा गई आप सभी जानते हैं कि रबड़ का लचीलापन समाप्त होने पर उसकी उपयोगिता ही समाप्त हो जाती है। आज यही हाल हमारे

* वरिष्ठ व्याख्याता,
जिला शिक्षण संस्थान, मसूदा, अजमेर, राजस्थान।

समाज में हमारी संस्कृति व युवावस्था का हो गया है। अब इसे पुर्नजीवित करना है तो योजनाबद्ध चरणबद्ध प्रारूप तैयार करना ही होगा। तब ही हम अपनी युवा पीढ़ी को अपनी संस्कृति से जोड़ उर्जावान युवा पीढ़ी के रूप में देख पाने का स्वप्न पूरा कर पाएंगे।

जिस प्रकार रबड़ ढीला पड़ जाए तो वह निरर्थक हो ही जाता है उसकी गुणवत्ता हमारे लिए उपयोगी नहीं रह पाती। हम पुनः उसी गुणधर्म वाला अन्य रबड़ लेकर अपनी प्रवृत्तियों (गलतियों) पर ध्यान केंद्रित कर सही रूप में प्रयोग बाद उसकी गुणवत्ता लंबे समय तक बरकरार रख पाने में सहयोगी रह सकते हैं। अतः वही प्रयास हमें करने होंगे। और उक्त रबड़ का भौतिक रूप परिवर्तित कर इसका भी सदुपयोग कर पाएंगे।

हम अपने धर्म, समाज, खानदान, परिवार को छोड़ निजी स्वार्थवश आत्मकेंद्रित होते जा रहे हैं। यह प्रवृत्ति हमारी अब हमें आत्मघाती सी महसूस होने लगी है। अतः हमें इससे निजात पाकर समग्रता की ओर बढ़ना होगा तब ही हम अपने परिवार, समाज, संस्कृति को बचा पाने के प्रयास में कामयाब हो पाएंगे। हमें अपनी युवापीढ़ी के दोष देखने से पहले अपने आप को सही व वास्तविक रूप में परखना होगा। उस पर कार्य करना होगा। ''हम सुधरेंगे युग सुधरेगा'' को ध्येय वाक्य बनाकर स्वीकार कर अमलीजामा पहनाने पर ही हम युवा पीढ़ी को धर्म, परिवार, समाज और संस्कृति से जोड़ पाने में कामयाब हो पाएंगे।

वर्तमान में हम अपनी पारिवारिक परंपराओं को नवरूप में गढ़ते-गढ़ते बहुत आगे बढ़ गए हैं। मैं, मेरा परिवार में खानदान तो बहुत पहले ही पीछे छूट गया था। आज जीवनसाथी और बच्चे से भी बहुत आगे पहुँच व्यक्तिगत व्यक्तित्व की स्वतंत्रता पर आ गया है जो कि अब खतरनाक हो गया है। यह सच है और इसकी जड़े भी बहुत गहरी है यह भी उतना ही सच है। अतः हमें अपनी जड़ों पर कार्य करने की आवश्यकता है। इन्हें उचित खाद, पानी, वायु, वातावरण प्राप्त होगा तब ही नव पुष्प सार्थक स्वरूप में पल्लवित हो पाएंगे।

अतः सर्वप्रथम हमें हमारे दृष्टिकोण पर ध्यान केंद्रित करना होगा। ताकि हम सही और स्पष्ट देख पाएं। एक बार स्वामी रामकृष्ण परमहंस जी ने कहा था :

''संसारियों के ज्ञान और सर्वत्यागियों के ज्ञान में बड़ा अंतर है संसारियों का ज्ञान दीपक के प्रकाश के समान है, उससे घर के भीतर के अंश में ही उजाला होता है, उसके द्वारा अपनी देह, घर, परिवार (जो कि वहाँ मौजूद हो) के काम, उनके अतिरिक्त और कुछ नहीं समझा जा सकता। सर्वत्यागी का ज्ञान सूर्य के प्रकाश की भांति है। उस प्रकाश से घर का भीतर और बाहर सब प्रकाशित हो जाता है, सब देख लिया जाता है।''

जहाँ तक मेरा व्यक्तिगत मत है कि हम सांसारिक, सामाजिक प्राणी दीपक बनने की सामर्थ्य रख पाए अतः बाहरी अंधकार बढ़ता हुआ देख नहीं पाए, धीरे-धीरे वह इतना बढ़ गया कि उसने हमारे व्यक्तित्व को ही अपने कब्जे में कर लिया, हम दृष्टिभ्रम के शिकार हो गए... होते गए, परिणाम स्वरूप नवपीढ़ी का वर्तमान स्वरूप हमारे समक्ष अनुत्तरित सा खड़ा है। अंधकार बहुत गहरा हो गया है अतः हम अपनी सामान्य नेत्र ज्योति से स्पष्ट नहीं देख पा रहे हैं, हमें दिव्यज्योति की आवश्यकता है ताकि हम उचित रूप में सही-सही देख पाए समझ पाए, यह दिव्य ज्योति भी हमें ही जगानी होगी। निजी स्वार्थ से उठ परमार्थ की ओर कदम बढ़ाने पर ही वह जाग पाएगी। देह से अदेह की ओर बढ़ने पर ही हमें उस दिव्य ज्योति के दर्शन हो पाएंगे जिसके प्रकाश में हम सही व उचित देख पाने का सामर्थ्य जुटा पाएंगे। वर्तमान दौर में हम अधिकांश मानव, देह (शरीर) के चंगुल में फंसे हुए उसके ही चारों ओर घूम रहे हैं। प्रकृति में पाए जाने वाले समस्त प्राणियों के पास देह (शरीर) है यह मानव ही है जो इस देह में विराजित आत्मा को उसके दिव्य स्वरूप में देखने की क्षमता रखता है, जो कि अन्य प्राणियों के पास उपलब्ध नहीं। इतना सब कुछ होने के पश्चात् भी हम इससे ऊपर उठ नहीं पा रहे हैं तभी हम और हमारी तीव्र गति से आगे बढ़ती हुई पीढ़ी रसातल की तरफ बढ़ती जा रही है। यहाँ हम मात्र दिशा निर्देशन देने मात्र से उसे रोक नहीं पाएंगे। हमें पहले स्वयं को रोकना होगा, समझना होगा। उस पर काम करना होगा तब जाकर ही हमारी कथनी-करनी समान हो पाएगी व अपनी प्रभावशीलता का दबदबा कायम कर पाएगी।

इस हेतु आवश्यकता है तो सिर्फ अपने आप को सकारात्मक बनाए रखने की। सकारात्मकता हमारी सफलता को सुनिश्चित करती है। सकारात्मकता की स्थिति में व्यक्ति मार्ग की प्रत्येक अड़चनों-बाधाओं को अपनी शक्ति-सामर्थ्य और सफलता की प्राप्ति का माध्यम बना लेता है। ऐसे में उसके व्यक्तित्व की सारी खूबियां धीरे-धीरे प्रकट होने लगती है। वह धर्म, संस्कृति, संस्कार,

सरोकार से जुड़ा रह पाता है। उसके संपर्क में आने वाले अन्य व्यक्ति भी उसके आभामंडल से प्रभावित हो धर्म, संस्कृति और उसके सामाजिक सरोकारों से जुड़ाव महसूस करते हैं। परिणामस्वरूप परिवर्तन की बयार स्वतः ही सूक्ष्म रूप में बहने लगती है।

क्योंकि धर्म कोई अजूबा नहीं है, यह तो सत्य के खोज की यात्रा मात्र है। यह हमारी जीवन यात्रा का साधन मात्र है। धर्म तो वही होता है जिससे धारण किया जा सके। वर्तमान पीढ़ी की यही प्रमुख समस्या है कि हमने छल, कपट, लूटपाट, व्यक्तिवाद, भोग-विलास, स्वार्थ आलस, आमोद, प्रमोद, झूठ मक्कारी को धारण किए बगैर अपना लिया है। इसे हम स्वीकारते तो नहीं है मगर वर्तमान समय में प्रकटीकरण तो यही हो रहा है। परिणामस्वरूप समस्याएं दिनों दिन बढ़ती नजर आ रही हैं और हम धारण योग्य (मूल्य) धर्म से दूर होते प्रतीत हो रहे हैं। हम स्वयं अपने आपको देख नहीं पाते, दूसरे हमें सहज ही दिखाई दे जाते हैं। अतः हमें सामने वाली पीढ़ी में अधार्मिकता के लक्षण नजर आते जा रहे हैं। जिन्हें पुनः पुनः धर्म से जोड़ने को हम लालायित होते जा रहे हैं। हम प्रयास कर रहे हैं, मगर हमें असफलता ही हासिल हो रही है कारण मात्र इतना सा ही कि धर्म से जुड़ा जा सकता है किसी को जोड़ा नहीं जा सकता। हम दूसरों को धर्म से जोड़ने के चक्कर में खुद आडम्बरों से जुड़ते जा रहे हैं। नवीन पीढ़ी जिसे धार्मिक पाखंड का नाम दे अधार्मिक प्रवृत्तियों की ओर मुड़ती जा रही है। दो पीढ़ियों के मध्य पीढ़ी दर पीढ़ी अंतराल बढ़ता जा रहा है, एक प्रतिद्वंदिता सी छाने लगी है। दोनों पीढ़ियों के मध्य जुड़ाव हेतु सेतुबंध के रूप में तीसरी पीढ़ी आज नदारद है। अब आप ही विचारिए हम भला कैसे जुड़ पाएंगे।

धर्म कहता है धारण करो। हम धारणा करने को कह रहे हैं। हम दूसरों को जोड़ने के लिए निरंतर प्रयासरत हैं। इस चक्कर में खुद खुद से टूटते जा रहे हैं। दिखावे के चक्कर में बिखरते जा रहे हैं। हमारी टूटी हुई बिखरी हुई पीढ़ी में सामर्थ्य नहीं कि वह अब आगामी पीढ़ी हेतु मार्ग प्रशस्त कर सके। अतः हमें अब जरा रुक कर अपने आप को समझना होगा। हम क्या करना चाहते हैं और क्या कर रहे हैं। उसे हमें ही पाटना होगा नव पीढ़ी तेजी से पाश्चात्य संस्कृति की ओर आगे बढ़ती नजर आ रही है। वह फिसलन भरा मार्ग है। अतः वहाँ तेजी से आनंददायक स्वरूप में फिसलना स्वभाविक है।

यदि हम चाहते हैं, वे रुके, तो उस हेतु हमारा सामर्थ्यवान होना बेहद जरूरी है। क्योंकि एक ऊर्जावान पीढ़ी को रोकने हेतु हमारा खुद का शारीरिक, मानसिक, आत्मिक सामाजिक, आर्थिक स्वरूप में बलशाली होना सामर्थ्यवान होना बेहद जरूरी है। क्योंकि यहाँ रोकने मात्र से काम नहीं चलेगा। रुकने से तो ऊर्जावान पीढ़ी की उर्जा उसे तहस-नहस कर देगी। यह कटु सत्य है। ऊर्जा का सकारात्मक सदुपयोग ना हो तो तुरंत स्वतः ही दुरुपयोग प्रारंभ हो जाता है। रोकने के पश्चात् उस उर्जावान पीढ़ी का आत्मीयता के साथ मार्गदर्शन करते हुए दिशा बोध करवाना बेहद जरूरी है।

यहाँ फिर यह प्रश्न समक्ष आ खड़ा हुआ कि क्या किसी को रोक कर हम कहें, समझाएं, दिशा बोध करवाएं तो सामने वाला हमें सच स्वीकार कर पाएगा?

यह बेहद जटिल प्रश्न है इसका उत्तर ''हां'' में देना भी सहज नहीं। चाहे हम इसके संबंध में अनेक तर्क दे दें मगर अप्रत्याशित रूप में सहजता से हाँ सुनने को कान तरस जाएंगे।

कारण मात्र इतना ही कि हम सिर्फ और सिर्फ उन्हें ही सुन व समझ पाते हैं जिनके प्रति हमारे भीतर सम्मानजनक भाव हैं। दूसरा वह कि हमारे कथन के साथ ठोस वैज्ञानिक तथ्य आधारित धरातल होना चाहिए। तीसरा हमारी कथनी और करनी में समानता होनी चाहिए।

अतः यदि हम वास्तव में चाहते हैं कि दूर भागती हुई युवा पीढ़ी, परिवार, संस्कार, समाज, धर्म व परोपकार से जुड़े तो सर्वप्रथम हम स्वयं मन, वचन और कर्म से खुद को खुद से जोड़ें। खुद के व्यक्तित्व व चरित्र को इस तरह इतना तराशें कि हमारा व्यक्तित्व सम्मानजनक स्वरूप में परिभाषित व स्वीकार्य हो।

हमारा दिशाबोधन हमारी कथनी ठोस वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित हो हमारे उदाहरण समसमायिक हो। वर्तमान समय, परिस्थितियों, वातावरण के अनुकूल हो।

हमारी कथनी हमारी करनी का दर्पण हो। जब हमारा व्यक्तित्व बगैर कुछ कहे बोल उठेगा तो आगामी पीढ़ी हमें सुन व समझ पाने का प्रयास कर पाएगी। शुरुआती प्रथम कदम जब स्वैच्छिक होगा तो स्वमेव ही सफलता की गुंजाइश शत-प्रतिशत बन जाएगी।

युवा पीढ़ी को धर्म व संस्कृति से जोड़ने में एक और बाधक तत्व है : वह है हमारा अभिव्यक्ति का माध्यम, हम समस्त प्राणी अपने हाव भाव से अपनी मूक अभिव्यक्ति से सहजता से कर जाते हैं। सामने वाला हमारी इस मूक अभिव्यक्ति को उतनी सहजता से सही सही समझ पाए यह आवश्यक नहीं। क्योंकि इस तरह से समझने में उस व्यक्ति की अपनी सूक्ष्म, समझ उसके अपने व्यक्तिगत पूर्वाग्रह भी साथ जुड़े होते हैं। अतः आमतौर पर हम अपनी अभिव्यक्ति हेतु भाषा को माध्यम के रूप में चुनते हैं, प्रयोग करते हैं।

यह कटु सत्य है कि प्रत्येक भाषा की अपनी संस्कृति होती है। हम अपनी संस्कृति की जननी संस्कृत को कहते हैं। संस्कृत एक भाषा होती है भाषा के साथ उसकी संस्कृति का प्रवाह भी स्वभाविक रूप में ही होता है। वैश्वीकरण के इस युग में हमें आजादी प्राप्त हुए 76 वर्ष बीत चुके हैं। इसके बावजूद भी अंग्रेजी भाषा का दबदबा यहाँ कायम है। आंचलिक भाषा/प्रादेशिक भाषा/हिंदी भाषा धीरे-धीरे काफी पीछे छूट गई है। हम रोजगार, व्यापार प्रगति पथ की अपेक्षा में अनेकानेक ठोस कारणों से अंग्रेजी को अपनाना अनिवार्य मान बैठे हैं। समाज में हिंदी भाषी विद्यालयों की दुर्दशा (नामांकन, मानवीय संसाधन) किसी से छिपी नहीं। जब अभिव्यक्ति का माध्यम भाषा ही पिछड़ने लगी है, तो स्वाभाविक रूप में भाषायी संस्कृति भी पिछड़ेपन का शिकार होती नजर आने लगी है। अंग्रेजी भाषा के साथ उसकी भाषाई संस्कृति भी हमारे समाज में पैर पसार चुकी है। यह सहज स्वाभाविक प्रक्रिया है। वैश्वीकरण के इस युग में यदि हम प्रगति पथ पर बढ़ने हेतु अंग्रेजी भाषा को अभिव्यक्ति के माध्यम रूप में अपनाते हैं तो अंग्रेजी संस्कृति संस्कार भाषा का अभिन्न अंग होने से स्वमेव ही हमारे पहलु से जुड़े जाते हैं। उनसे बचना आसान नहीं होता है। यदि बचने का प्रयास हम करें भी तो आधे अधूरे से हो जाते हैं। परिणामस्वरूप हमारी युवा पीढ़ी हमें स्वीकार नहीं पाती स्वतः ही हमारी सांस्कृतिक चेतना कटघरे में आ जाती है। वर्तमान सामाजिक स्थितियां इसका सशक्त उदाहरण हैं।

इस हेतु हमें मात्र यह करना है कि आगामी पीढ़ी को हम प्रारंभिक शिक्षा अपनी आंचलिक मातृभाषा में व अपनी आगामी शिक्षा अपनी मातृभाषा-राष्ट्रभाषा में ही प्रदान करवाएं। हिंदुस्तानी संस्कृति को बचाना है तो शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हिंदी ही होना चाहिए अंग्रेजी भाषा को अन्य विषय के रूप में सीखने पढ़ने के अवसर होने चाहिए। ताकि अन्य भाषा को सीखने, समझने के पर्याप्त अवसर हों। वैश्वीकरण के इस युग में नव पीढ़ी अपनी संस्कृति, धर्म, समाज, परोपकार के साथ जुड़ वैश्विक स्तर पर अपना परचम फहरा सके। आवश्यकतानुसार अन्य भाषाओं को भी सीख व समझ अपनी योग्यताओं को बढ़ा सकें। यह नवीन राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 में भी सिफारिश की गई है। आवश्यकता मात्र इस बात की है कि हम उसे अमलीजामा पहनाने में बगैर किंतु परंतु किए कामयाबी हासिल करें।

धर्म को जाने बगैर धार्मिकता का निर्वाह मात्र परंपराओं की रस्म अदायगी रह जाता है। जिससे हमारी संस्कृति खतरे में आ जाती है। इस हेतु भाषायी सुदृढ़ता बेहद जरूरी है। हमें इस दिशा में प्रयास करने ही चाहिए। तभी हम अपनी युवा पीढ़ी को अपनी धर्म, संस्कृति, समाज, संस्कार, परोपकार से जोड़े रखने में कामयाब हो पाएंगे। हम स्वयं धर्म ग्रंथ पढ़े, समझे ताकि आगामी पीढ़ी की संबंधित जिज्ञासाओं का समाधान कर पाने का हौसला साथ रख पाएं। साथ ही बालकों को भी विद्यार्थी जीवन काल में प्राथमिक कक्षाओं में रामायण, महाभारत, माध्यमिक कक्षाओं में चारों वेद, उच्च माध्यमिक में गीता अध्ययन का अवसर प्रदान करें। धर्म वेद ग्रंथ को पढ़ने समझने से वे भी अपनी संस्कृति के मूल-भाव को समझ पाएंगे। इस तरह से हमारी आगामी पीढ़ी धर्म, संस्कृति, समाज से जुड़ पाएगी। अपनी संस्कृति को ठीक से समझ पाएगी। स्वतः ही अपनी संस्कृति से जुड़े रहने को प्रेरित उत्साहित रह पाएगी। सांस्कृतिक मर्यादाओं में खूबियां देख पाएगी। खामियां ढूंढ़ने देखने का विचार स्वतः ही दम तोड़ देगा। नव पीढ़ी में सांस्कृतिक ठहराव आने से अस्ताचल की ओर आगे बढ़ने की गति में कुछ कमी आएगी। परिणामस्वरूप आशाओं का नव सवेरा प्रकट होता नजर आएगा।

****